प्राचीन भारतीय शिक्षा पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता का अध्ययन

Karuna Kumari*

Research Scholar, SSSUTMS University, Madhya Pradesh

---------------------------------X---------------------------------

प्रस्तावना :–

शिक्षा का दर्शन एवं धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय शिक्षा प्राचीन काल से ही दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों से जुड़ी रही है। संसार की परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप दार्शनिक विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहता है और तद्नुसार शिक्षा व्यवस्था भी परिवर्तित होती रहती है। सत्य तो यह है कि दर्शन का व्यावहारिक रूप शिक्षा है और शिक्षा का सैद्धान्तिक रूप दर्शन। वह दर्शन, दर्शन नहीं है जिसका शिक्षा पर प्रभाव न हो और वह शिक्षा, शिक्षा नहीं है, जिसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि न हो। वास्तविक दर्शन वह है जिसमें युवकों को जीवन के प्रति उचित दृष्टिकोण को अपनाने हेतु प्रेरित करने और सम्पूर्ण समाज को शिक्षा के उचित विचारों को ग्रहण कराने की शक्ति होती है, चाहे उस दर्शन के उद्देश्य या विशेषतायें कुछ भी क्यों न हों। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों से जुड़ी रही है। राजनीति का प्रभाव शिक्षा पर वर्तमान युग में स्वतन्त्राता के उपरान्त पड़ने लगा है। पिफर भी भारतीय शिक्षा प्राचीनकाल के दार्शनिक विचारों से अब भी अति घनिष्ठ रखती है। वैदिक कालीन शिक्षा और बौद्धकालीन शिक्षा का प्रभाव निरन्तर चला आ रहा है। शिक्षा शास्त्रा के सभी विषयों तथा कार्यों में इन दार्शनिक विचारों का प्रभाव दिखलायी पड़ता हैं प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के सभी विषयों एवं पाठ्यक्रमों पर इसका प्रभाव पाया जाता है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था एवं बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था पर अलग–अलग अनेकों विस्तृत अध्ययन हुए हैं, किन्तु बौद्ध दर्शन का वैदिक शिक्षा पर प्रभाव एवं वर्तमान शिक्षा में इसकी उपादेयता की दृष्टि से छिटपुट तथा आंशिक रूप से ही कार्य हुआ।

''प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण सभ्यताओं में एक है। इस सभ्यता के समुचित ज्ञान के लिए हमें इसकी शिक्षा पद्धति का अध्ययन करना आवश्यक है, जिसने इस सभ्यता को चार हजार वर्षों से भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा, उसका प्रचार–प्रसार किया तथा उसमेमं संशोधन किया। प्राचीन भारतीयों ने शिक्षा को अत्याधिक महत्व प्रदान किया। भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों के विधिवत निर्वाह के लिए शिक्षा की महत्ती आवश्यकता को सदैव स्वीकार किया गया। वैदिक युग से ही इसे प्रकाश का स्रोत माना गया है जो मानव–जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुए उसे सही दिशा–निर्देश देता है। प्राचीन कालीन शिक्षा का तात्पर्य उस युग से है जब यहाँ की सभ्यता अपने आदि रूप में पायी जाती रही। इतिहासकारों ने इसे पूर्व वैदिक काल कहा है जो ई.पू. 3000 वर्ष के लगभग था। तदुपरांत वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल आया। इसका प्रारम्भ ई. पू. 3000 वर्ष हुआ और यह काल लगभग ई. पू. 1000 वर्ष तक रहा। सुविधा के विचार से यह काल खण्ड अब वैदिक काल के नाम से पुकाराजाता है।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा प(ति के उद्देश्य उच्च–कोटि के थे। शिक्षा सम्बन्धी प्राचीन भारतीयों का दृष्टिकोण मात्रा आदर्शवादी ही नहीं, अपितु अधिकांश अंशों में व्यावहारिक भी था। यह व्यक्ति को सांसारिक जीवन की कठिनाइयों एवं समस्याओं के समाधान के लिए सर्वथा उपयुक्त बनाती थी। शिक्षा समाज–सुधार का सर्वोत्तम माध्यम थी।

आधुनिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की विकृति का मुख्य कारण यह है कि हमने साक्षरता का प्रतिशत तो बढ़ाया है, पर हम यह दावा नहीं कर सकते हैं कि हमने साक्षर समूह को सुशिक्षित किया है। शिक्षा वह है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है, उसे सामाजिक जीवन जीने की कला में पारंगत करती है, उसे स्व की परिधि से निकाल कर पर–परिधि में प्रतिष्ठित करती है। इसीलए प्राचीन शिक्षा में शिक्षार्थी को सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, दान आदि मूल्यों को आत्मसात करने के लिए प्रेरित किया जाता था।

बौद्ध कालीन शिक्षा संबंधी संस्कारः–

वैदिक काल में शिक्षा प्रारम्भ करने और शिक्षा समाप्त करने के लिए बहुत से संस्कारों को करना आवश्यक था। प्रमुख संस्कार विद्यारम्भ, उपनयन, प्रवेश, परिचर्या तथा समावर्तन थे। बौद्धदर्शन से संस्कारों की व्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ने लगा। शिक्षा प्राप्त करने के लिए बालकों का मठों में प्रवेश हेतु प्रव्रज्या संस्कार होता था। प्रव्रज्या का शाब्दिक अर्थ है बाहर जाना। अतः प्रव्रज्या संस्कार से तात्पर्य है कि शिक्षा के लिए घर से बाहर जाना। मठ का सबसे बड़ा भिक्षु ही सामान्यतः इस संस्कार को संपन्न कराता था। प्रव्रज्या का इच्छुक बालक सिर के बाल मुंडवाकर तथा पीले वस्त्रा पहनकर भिक्षु के चरणों में माथा टेककर ्पशरण–त्रायीः लेता था। अर्थात् बालक बौद्धशरणम् गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि, का उच्चारण करता था। प्रव्रज्या आठ वर्ष के बालक को दी जाती थी तथा प्रव्रज्या के बाद बालक 'सामनेर' कहलाता था और उसे मठ में ही रहना होता था। बौद्धमठों के द्वार सभी के लिए खुले रहते थे तथा जाति का कोई

बंधन नहीं था। परन्तु अस्वस्थ, विकलांग, दंडित व्यक्तियों तथा राज्य के कर्मचारी व सैनिकों को प्रव्रज्या का अधिकार न था। स्पष्ट है कि बौद्धकाल का प्रव्रज्या संस्कार वैदिक युग के उपनयन संस्कार से मिलता–जुलता था।

बौद्ध कालीन शिक्षा का स्वरूप :

वैदिक काल में व्यक्ति धर्मपरायण एवं ईश्वर भक्त थे। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान करना ही शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य था। जबकि बौद्धकाल में आध्यात्मिक विकास पर अधिक जोर न देकर नैतिकता तथा शील पर अधिक ध्यान दिया जाता था। नैतिक चरित्रा में अन्य गुणों के साथ–साथ दैनिक जीवन में मधुर स्वभाव, अच्छा आचरण, निष्ठा, कर्त्तव्य पालन तथा पवित्राता जैसे गुण भी निहित थे। शिक्षा से जो अन्तर्ज्योति प्राप्त होती थी उसका प्रथम उद्देश्य था शिक्षार्थी के चरित्रा का रूपान्तर और उन्नति। अतः शिक्षा का उद्देश्य था नैतिक भावनाओं के सम्यक् विकास से चरित्रा का निर्माण। लॉक का अभिमत था कि बौद्ध सि(ियों से अधिक महत्व नैतिक भावनाओं के विकास और चरित्रा निर्माण का है। शिक्षा के वृक्ष में यदि पाण्डित्य और ज्ञान का काल निकलता है तो सदाचार और शील का भी निकलना चाहिए। इसलिए शिक्षा की सहायता से छात्रों में कर्त्तव्य पालन, सत्य बोलने, धर्माचरण करने आदि नैतिक गुणों का विकास किया जाता था। छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करना भी बौद्धकालीन शिक्षा का एक मुख्य लक्ष्य था।

बौह कालीन सामाजिक व्यवस्थाः

ई. पू. छठी शताब्दी का काल भारत के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए धार्मिक क्रांति का काल था। भारतीय सामाजिक परिस्थितियों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय समाज अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक संक्रांति से गुजर रहा था। यह एक संघर्ष काल था। ब्राह्मण–क्षत्रिाय में, राजतंत्रा एवं गणतंत्रा में, आर्यों तथा आर्येत्तर जातियों के बीच पफैले संघर्ष ने धार्मिक क्रांति को अवश्यम्भावी बना दिया। उत्तर वेद कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने इस क्रांति के लिए उपयुक्त भूमि बनाई। जाति प्रथा की कठोरता, कर्मकाण्डों की बहुलता, हिंसामय यज्ञों की बाढ़, बहुदेववादजन्य पारस्परिक वैमनस्य, विविध धार्मिक आडम्बर आदि इस क्रांति के प्रमुख कारण थे। इसी पृष्ठ भूमि में बौद्ध सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। त्याग, तप एवं तपोवनों के बीच विकसित वैदिक संस्कृति के उदात्त तत्वों का अस्तित्व धूमिल पड़ गया था। उनका स्थान विभिन्न विधि–निषेध युक्त धार्मिक औपचारिकताओं, व्ययसाध्य जटिल एवं हिंसामय यज्ञविधानों एवं अंधविश्वासों ने ले लिया था। यज्ञ विधान इतने व्यय एवं समयसाध्य हो गए थे कि राजवर्ग को भी भारी पड़ते थे। महाभारत में ऐसे भी उदाहरण हैं जिससे ज्ञात होता है कि अनेक नरेश इस जटिल एवं व्यय साध्य यज्ञों को सम्पादित करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते थे। ब्राह्मणों ने स्वार्थवश इन यज्ञों का स्वरूप और भी विकृत कर रखा था। सामाजिक जीवन में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता एवं प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी–चढ़ी थी कि उनका अस्तित्व प्रायः अपरिहार्य हो चुका था। ज्ञान और तप पर ब्राह्मणों का एकाधिकार सा था। ऐसी परिस्थिति में निम्न वर्ग के लोगों में क्षेम एवं असंतोष होना स्वाभाविक था। सामाजिक तथा धार्मिक नवचेतना के इस युग में बौद्ध सदृश महापुरुष का इस देश में जन्म हुआ, जिन्होंने संसार को सत्य और अहिंसा का वह संदेश दिया जो भव–व्याधि से पीड़ित मानव के लिए वरदान हो गया। गौतम बौद्ध के संदेश उत्तुंग हिमगिरि तथा उत्ताल जलधि–तरंगों का अतिक्रमण कर अनेक देशों में प्रसारित हुए। उन्होंने धार्मिक जगत को संघीय जीवन पद्धति दी। इस युग में कई नये मतों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों तथा अंधविश्वासों के प्रतिकार का मार्ग प्रशस्त किया। जातिवाद का सर्वप्रथम विरोध बौद्ध ने किया। इन्होंने वेद तथा ब्राह्मण की प्रभुता को भी चुनौती दी। उन्होंने रूग्ण भारतीय समाज को स्वास्थ्य प्रदान करने का यथाशक्ति प्रयास किया। तत्कालीन समाज पर उनके प्रभाव को देखा जा सकता था।

उपसंहारः–

आज के परिवेश में गौतम बौद्ध का शिक्षा दर्शन और भी प्रासंगिक हो गया है। उनके 'आत्म दीपो भव' का आज के समाज के लिए और उपयोगी हो गया है। अगर व्यक्ति में समाज के प्रति सकारात्मक सोच; जो घटता जा रहा हैद्ध उत्पन्न करना है तो उनके सुझाए मार्ग को अविलम्ब अपनाना होगा। किसी भी शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व एवं चरित्रा का सर्वांगीण विकास है। चूंकि बौद्ध दर्शन की शिक्षाए कायिक, वाचिक एवं मानसिक विशु(का लक्ष्य रखती हैं, अतः इनका उपयोग आधुनिक शिक्षण में भली–भांति किया जा सकता है। मूल्यपरक शिक्षण प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था का अंग रहा हैं। बौद्ध दर्शन के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, अस्तेत, अपरिग्रह, प्रेम, करुणा, विश्वबंधुत्व सदृश अनेक शाश्वत् मूल्यों को जीवन में आत्मसात् करने पर बल दिया गया है। इन मूल्यों को आधुनिक शिक्षण से सम्ब(करके इसे मूल्यपरक बनाया जा सकता है। बौद्धदर्शन के अंतर्गत सदाचार पर विशेष बल दिया गया है। आज भी शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य शिक्षार्थी को सदाचारी बनाना है, ताकि वह न केवल ज्ञानी बन सके अपितु सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन में एक आदर्श भूमिका निभा सके। बौद्ध शिक्षा के अंतर्गत नारी शिक्षा पर भी विशेष बल दिया गया है। आधुनिक शिक्षा में भी नारी शिक्षा के विकास एवं उत्थान पर विशेष बल दिया जा रहा है।

बौद्ध की शिक्षाएं समस्त मानवमात्रा के लिए थी, किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं। इनमें स्त्राी–पुरुष, धर्म आदि का कोई भेद स्वीकार्य न था। बुद्ध न तो अंधविश्वासी थे और न ही वे अंधविश्वासों को बढ़ावा देने के पक्ष में थे। अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि किसी भी विचार का अंधनुकरण न कर उसे तर्क की कसौटी पर कसा जाए और उसके खरा उतरने पर ही उसे स्वीकार किया जाए। बौद्ध का यह दर्शन व्यक्ति को प्रगतिशील बनने की प्रेरणा प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अंगुत्तर निकाय : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा देवनागरी, संस्करण 1958, सम्पादिक रिचर्ड मोरिस और एण्डमण्ड हार्डी, पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन, 1885–1900

कथावस्तु : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा, देवनागरी संस्करण 1961

जातक : सम्पादिक, पफाउसबोल्ल, ट्रबनर एण्ड कं.लि., लंदन, 1877–96

चुल्लवग्ग : सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1956

दीघनिकाय : सम्पादक, टी.डब्ल्यू. रीज रेविड्स और जे.इकारपेंटर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लंदन, 1890–1911, सम्पादिक भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा, देवनागरी संस्करण, 1958, हिन्दी अनुवाद, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि, सारनाथ, 1936

धम्मपद : सम्पादक, एस.एस. थेर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1914, अंग्रेजी अनुवाद, एपफ. मेक्समूलर, सेक्रेड कुक्स ऑपफ दी ईस्ट, जिल्द 10, (भारतीय संस्करण) दिल्ली 1965

धम्मपद अट्ठकथा : बौद्धघोष, सम्पादित, एच.सी. नार्मल और एचएस. तेलंग, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1906–15

मजिझम निकाय : सम्पादित भिक्षु जगदीश कश्यप, नालंदा देवनागरी संस्करण, 1958, सम्पादक, बी. ट्रैन्कर और आरयामर्स, पालि टेक्स्ट सोयायटी, लन्दन, 1888–1902, हिन्दी अनुवाद, राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ, 1964

महावंश : सम्पादक, डब्ल्यू. गायगर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, 1908, अंग्रेजी।

Corresponding Author

Karuna Kumari*

Research Scholar, SSSUTMS University, Madhya Pradesh

E-Mail – chintuman2004@gmail.com